Shodhbodhalaya: An International Peer reviewed Multidisciplinary Journal
Volume 4 | Issue 1 | ISSN: 2584-1807 | (https://shodhbodh.com/)

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरण चेतना और प्रकृति चित्रण : एक पारिस्थितिक अध्ययन

डॉ. प्रतिभा सिंह
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
शासकीय शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज
जिला-मऊगंज (म.प्र.)

सारांश (Abstract)

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति का चित्रण आरम्भ से ही एक महत्वपूर्ण उपादान रहा है, परन्तु समय के साथ यह चित्रण केवल अलंकारिक अथवा पृष्ठभूमि-निर्माण के स्तर से आगे बढ़कर एक गहन पारिस्थितिक तथा पर्यावरणीय चेतना के रूप में विकसित हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में हिन्दी उपन्यासों में निहित पर्यावरण चेतना तथा प्रकृति चित्रण की प्रवृत्तियों का पारिस्थितिक आलोचना अर्थात इकोक्रिटिसिज्म की दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्ययन में प्रेमचन्द के कृषि-केन्द्रित उपन्यासों से लेकर फणीश्वरनाथ रेणु के आंचलिक उपन्यासों, अज्ञेय के दार्शनिक प्रकृति-चित्रण, संजीव जैसे लेखकों के आदिवासी-विस्थापन तथा पर्यावरण-विनाश केन्द्रित उपन्यासों, तथा समकालीन पारिस्थितिक उपन्यासकारों की रचनाओं का विवेचनात्मक विश्लेषण किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण की परम्परा किस प्रकार क्रमशः अलंकारिक वर्णन से आगे बढ़कर पारिस्थितिक असंतुलन, पर्यावरणीय शोषण तथा मानव-प्रकृति सम्बन्धों के गहन प्रश्नों तक पहुँची है। अध्ययन गुणात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है, जिसमें चयनित उपन्यासों के मूल पाठ, समीक्षात्मक शोध लेखों तथा साहित्यिक इतिहास ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। निष्कर्ष रूप में यह पाया गया कि हिन्दी उपन्यास साहित्य पर्यावरणीय चेतना के प्रसार में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक माध्यम की भूमिका निभा सकता है, परन्तु इस दिशा में और अधिक व्यवस्थित आलोचनात्मक तथा शैक्षणिक कार्य की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द (Keywords)

हिन्दी उपन्यास, पर्यावरण चेतना, प्रकृति चित्रण, पारिस्थितिक आलोचना, इकोक्रिटिसिज्म, आंचलिक उपन्यास, प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय, संजीव, विस्थापन।

प्रस्तावना-

साहित्य और प्रकृति का सम्बन्ध मानव सभ्यता के आरम्भिक काल से ही अत्यंत घनिष्ठ रहा है। संस्कृत काव्य-परम्परा से लेकर आधुनिक हिन्दी साहित्य तक, प्रकृति ने कभी पृष्ठभूमि के रूप में, कभी अलंकार के रूप में तथा कभी प्रतीक के रूप में साहित्यिक रचनाओं में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। परन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में, विशेष रूप से पर्यावरणीय संकट के वैश्विक स्तर पर गम्भीर होने के साथ, साहित्य में प्रकृति का चित्रण एक नए आयाम में परिवर्तित हुआ, जिसे पारिस्थितिक आलोचना अथवा इकोक्रिटिसिज्म के नाम से जाना जाता है। यह आलोचना-पद्धति साहित्यिक रचनाओं में मानव तथा प्रकृति के सम्बन्धों का पारिस्थितिक दृष्टिकोण से विश्लेषण करती है, तथा यह प्रश्न उठाती है कि साहित्य किस प्रकार पर्यावरणीय चेतना को प्रतिबिम्बित, आकार अथवा प्रभावित करता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण की परम्परा का आरम्भ मुंशी प्रेमचन्द से माना जा सकता है, जिन्होंने अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन, कृषि तथा भूमि के साथ किसान के गहन सम्बन्ध को यथार्थवादी शैली में चित्रित किया। प्रेमचन्द के पश्चात् फणीश्वरनाथ रेणु ने आंचलिक उपन्यास की एक नई परम्परा स्थापित की, जिसमें विशिष्ट भौगोलिक अंचल की प्राकृतिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक बुनावट को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया गया। इसके समानांतर अज्ञेय जैसे आधुनिकतावादी लेखकों ने प्रकृति को एक दार्शनिक तथा प्रतीकात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया, जिसमें प्रकृति व्यक्ति-चेतना तथा अस्तित्व के गहन प्रश्नों से जुड़ जाती है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों तथा इक्कीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में, जब औद्योगीकरण, वनोन्मूलन, बड़े बाँध परियोजनाओं तथा आदिवासी विस्थापन जैसे मुद्दे भारतीय समाज में केन्द्रीय बहस का विषय बने, हिन्दी उपन्यास साहित्य ने भी इन विषयों को अपने कथ्य का अभिन्न अंग बनाया, जिसका सबसे उल्लेखनीय उदाहरण संजीव जैसे लेखकों की रचनाओं में देखा जा सकता है।

यह परिवर्तन केवल विषय-वस्तु के स्तर पर ही नहीं, अपितु शिल्प तथा दृष्टिकोण के स्तर पर भी उल्लेखनीय है। जहाँ प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति प्रायः मानव-कथा की पृष्भूमि अथवा अलंकरण के रूप में प्रस्तुत होती थी, वहीं समकालीन उपन्यासों में प्रकृति स्वयं एक सक्रिय पात्र अथवा नैतिक प्रश्न के रूप में उभरती है, जहाँ पारिस्थितिक असंतुलन, संसाधन-शोषण तथा मानव-प्रकृति संघर्ष केन्द्रीय कथ्य बन जाते हैं। यह परिवर्तन हिन्दी

साहित्य की सामाजिक-सांस्कृतिक संवेदनशीलता तथा समकालीन वैश्विक पारिस्थितिक विमर्श के साथ उसके संवाद को भी प्रदर्शित करता है।

भारतीय सन्दर्भ में साहित्य तथा पारिस्थितिकी का यह सम्बन्ध और भी विशिष्ट इसलिए है, क्योंकि भारत की सांस्कृतिक तथा दार्शनिक परम्पराओं में प्रकृति को प्रारम्भ से ही एक सजीव, पूज्य तथा मानव-जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। वेद, उपनिषद तथा पुराण जैसे प्राचीन ग्रन्थों में नदियों, वृक्षों तथा पर्वतों को देवत्व प्रदान करने की परम्परा इस बात का प्रमाण है कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना में मानव तथा प्रकृति के मध्य कोई स्पष्ट द्वैतवादी विभाजन कभी विद्यमान नहीं रहा। आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से इस प्राचीन परम्परा का सन्दर्भ न भी दे, अनेक स्थानों पर इसी समग्र तथा अंतर्संबंधित दृष्टिकोण को अपनी आधुनिक, यथार्थवादी शैली में पुनःप्रस्तुत करता प्रतीत होता है, जो इसे पश्चिमी पारिस्थितिक साहित्यिक परम्परा से एक विशिष्ट सांस्कृतिक भिन्नता तथा गहराई प्रदान करता है।

प्रस्तुत शोध पत्र इसी विकास-क्रम का, प्रतिनिधि उपन्यासों तथा उपन्यासकारों के माध्यम से, एक व्यवस्थित पारिस्थितिक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास करता है।

शोध प्रविधि-

प्रस्तुत शोध पत्र गुणात्मक तथा विश्लेषणात्मक शोध प्रविधि पर आधारित है। अध्ययन के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में हिन्दी के प्रतिनिधि उपन्यासों, यथा प्रेमचन्द के 'गोदान' तथा 'रंगभूमि', फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' तथा 'परती परिकथा', सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' के 'नदी के द्वीप' तथा 'शेखर : एक जीवनी', संजीव के 'धार' तथा अन्य आदिवासी-केन्द्रित उपन्यासों, एवं समकालीन उपन्यासकारों की चयनित रचनाओं का पाठात्मक विश्लेषण किया गया है। द्वितीयक स्रोत के रूप में इन उपन्यासों पर लिखित समीक्षात्मक शोध लेख, साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ, तथा पारिस्थितिक आलोचना सम्बन्धी सैद्धांतिक साहित्य का उपयोग किया गया है।

अध्ययन की पद्धति वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक है, जिसमें चयनित उपन्यासों में उपलब्ध प्रकृति-सम्बन्धी अंशों, प्रतीकों, बिम्बों तथा कथानक-संरचनाओं का पारिस्थितिक आलोचना के सैद्धांतिक ढाँचे के आधार पर विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण में विशेष रूप से इस बात पर ध्यान केन्द्रित किया गया है कि प्रत्येक उपन्यासकार किस प्रकार मानव तथा प्रकृति के सम्बन्धों को चित्रित करता है, तथा क्या यह चित्रण केवल वर्णनात्मक है अथवा इसमें पारिस्थितिक चेतना अथवा आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी अंतर्निहित है। तुलनात्मक पद्धति का भी उपयोग किया

गया है, जिसमें विभिन्न कालखण्डों तथा विभिन्न लेखन-शैलियों के उपन्यासकारों के प्रकृति-चित्रण की तुलना करके इस विकास-क्रम की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

उपन्यासों के चयन का आधार तीन प्रमुख मानदण्डों पर रखा गया है, अर्थात उनकी साहित्यिक-ऐतिहासिक प्रतिनिधित्व-क्षमता, उनमें प्रकृति चित्रण की सघनता तथा केन्द्रीयता, तथा उनकी आलोचनात्मक मान्यता एवं शैक्षणिक उपयोगिता। इन मानदण्डों के आधार पर विभिन्न कालखण्डों, यथा प्रेमचन्द-युगीन यथार्थवाद, आंचलिक तथा प्रगतिशील परम्परा, आधुनिकतावादी दृष्टि, तथा समकालीन पारिस्थितिक लेखन, से प्रतिनिधि उपन्यासों का चयन किया गया है, जिससे अध्ययन की समग्रता तथा ऐतिहासिक व्यापकता सुनिश्चित हो सके।

शोध पत्र का उद्देश्य-

प्रस्तुत शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं। सर्वप्रथम, हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण की ऐतिहासिक विकास-यात्रा का विश्लेषण करना, तथा यह स्पष्ट करना कि यह चित्रण किस प्रकार अलंकारिक वर्णन से गहन पारिस्थितिक चेतना की ओर विकसित हुआ, इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य है। द्वितीयतः, प्रेमचन्द, फणीश्वरनाथ रेणु, अज्ञेय तथा संजीव जैसे प्रतिनिधि उपन्यासकारों की रचनाओं में निहित पर्यावरण चेतना तथा प्रकृति चित्रण की विशिष्ट प्रवृत्तियों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना भी इस शोध पत्र का महत्वपूर्ण लक्ष्य है। तृतीयतः, इन उपन्यासों में प्रयुक्त प्रकृति-सम्बन्धी शिल्पगत तकनीकों, यथा बिम्ब-योजना, प्रतीकात्मकता तथा मानवीकरण, का विश्लेषण करना भी इस अध्ययन में सम्मिलित है। चतुर्थतः, हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विस्थापन, वनोन्मूलन तथा औद्योगीकरण जैसे समकालीन पारिस्थितिक मुद्दों के चित्रण का मूल्यांकन करना भी इस शोध पत्र का उद्देश्य है। अंततः, हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक आलोचना के क्षेत्र में भविष्य के शोध तथा शैक्षणिक कार्यों हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना इस शोध कार्य का समग्र उद्देश्य है।

शोध पत्र का महत्व-

प्रस्तुत शोध पत्र अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। साहित्यिक-आलोचनात्मक दृष्टि से यह अध्ययन हिन्दी साहित्य में अपेक्षाकृत नवीन तथा विकासशील पारिस्थितिक आलोचना पद्धति के अनुप्रयोग का एक व्यवस्थित प्रयास प्रस्तुत करता है, जो हिन्दी आलोचना-परम्परा में इस पद्धति के सुदृढ़ीकरण में योगदान दे सकता है। पश्चिमी साहित्य में इकोक्रिटिसिज्म एक सुस्थापित आलोचना-पद्धति के रूप में विकसित हो चुका है, परन्तु हिन्दी साहित्य

के सन्दर्भ में इस दिशा में अभी भी अपेक्षाकृत सीमित कार्य हुआ है, जिससे यह शोध पत्र इस शोध-रिक्तता को भरने का एक प्रयास प्रस्तुत करता है।

शैक्षणिक दृष्टि से भी यह अध्ययन महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह हिन्दी साहित्य तथा पर्यावरण अध्ययन दोनों विषयों के विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों के लिए एक अंतर-विषयक सन्दर्भ सामग्री का कार्य करेगा। वर्तमान समय में जब जलवायु परिवर्तन तथा पारिस्थितिक संकट वैश्विक स्तर पर अत्यंत गम्भीर विषय बन चुके हैं, तब साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय चेतना का अध्ययन तथा प्रसार विशेष प्रासंगिकता रखता है। सामाजिक दृष्टि से भी यह शोध पत्र महत्वपूर्ण है, क्योंकि साहित्य समाज की सामूहिक चेतना को प्रतिबिम्बित करने के साथ-साथ उसे आकार भी देता है, अतः हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना का अध्ययन यह समझने में सहायक है कि भारतीय समाज ने अपने प्राकृतिक परिवेश के साथ अपने सम्बन्धों को किस प्रकार समय के साथ पुनर्परिभाषित किया है।

तुलनात्मक तथा अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी यह शोध पत्र सार्थक है, क्योंकि यह हिन्दी उपन्यास साहित्य को वैश्विक पारिस्थितिक साहित्य-विमर्श के साथ जोड़ने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह अध्ययन न केवल हिन्दी साहित्य के आंतरिक विकास को समझने में सहायक है, अपितु यह विश्व साहित्य में भारतीय पारिस्थितिक चिंतन के योगदान को भी रेखांकित करने का प्रयास करता है।

नीतिगत तथा सांस्कृतिक-संरक्षण दृष्टि से भी यह शोध पत्र प्रासंगिक है, क्योंकि साहित्य पर्यावरणीय नीति-निर्माण तथा जन-जागरूकता के लिए एक सशक्त परन्तु प्रायः अल्प-उपयोगित माध्यम है। वैज्ञानिक तथा तकनीकी भाषा में प्रस्तुत पर्यावरणीय आँकड़े जन-सामान्य में उतनी गहन भावनात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न नहीं कर पाते, जितनी कि साहित्य में चित्रित मानवीय कथाएँ तथा अनुभव उत्पन्न कर सकते हैं। हिन्दी उपन्यासों में चित्रित पर्यावरणीय संकट की कथाएँ, जैसे संजीव के 'धार' में आदिवासी विस्थापन अथवा नवीन जोशी के 'दावानल' में वनाग्नि का विनाशकारी प्रभाव, जन-सामान्य में पर्यावरण-संरक्षण के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने में एक शक्तिशाली सांस्कृतिक माध्यम सिद्ध हो सकती हैं, जिसका उपयोग पर्यावरण-शिक्षा तथा जन-जागरूकता अभियानों में भी किया जा सकता है।

हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरण चेतना-

हिन्दी उपन्यास साहित्य में पर्यावरण चेतना का विकास एक क्रमिक तथा बहुस्तरीय प्रक्रिया रही है, जिसे विभिन्न कालखण्डों तथा लेखन-प्रवृत्तियों के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है।

प्रेमचन्द युग : भूमि, कृषि एवं प्रकृति का यथार्थवादी चित्रण-

मुंशी प्रेमचन्द को हिन्दी उपन्यास साहित्य में यथार्थवादी परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है, और उनके उपन्यासों में प्रकृति चित्रण मुख्यतः किसान-जीवन तथा भूमि के अंतर्संबंध के माध्यम से प्रस्तुत होता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में नायक होरी महतो का चरित्र भूमि, गोवंश तथा कृषि-जीवन के प्रति गहन आत्मीयता तथा निर्भरता को प्रदर्शित करता है। यद्यपि प्रेमचन्द के समय में पर्यावरणीय चेतना आज के अर्थ में एक स्पष्ट सैद्धांतिक अवधारणा के रूप में विद्यमान नहीं थी, तथापि उनके उपन्यासों में किसान तथा भूमि के मध्य के सम्बन्ध का जो गहन तथा संवेदनशील चित्रण मिलता है, वह एक प्रकार की अंतर्निहित पारिस्थितिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें भूमि केवल आर्थिक संसाधन नहीं, अपितु सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान तथा अस्तित्व का आधार है।

प्रेमचन्द के एक अन्य उपन्यास 'रंगभूमि' में भी भूमि-अधिग्रहण, औद्योगीकरण तथा किसानों के विस्थापन का प्रश्न केन्द्रीय स्थान रखता है, जो आज के सन्दर्भ में विकास बनाम पर्यावरण-संरक्षण के बहस का एक प्रारम्भिक साहित्यिक रूप प्रतीत होता है। इस उपन्यास में सूरदास नामक अंधे भिखारी के चरित्र के माध्यम से भूमि पर आम जन के परम्परागत अधिकार तथा औद्योगिक पूँजी के आक्रमण के मध्य के द्वंद्व को चित्रित किया गया है, जो पारिस्थितिक न्याय की अवधारणा से गहनता से सम्बद्ध प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रेमचन्द के उपन्यासों को हिन्दी साहित्य में पारिस्थितिक चेतना के आरम्भिक, यद्यपि अस्पष्ट, बीजों के रूप में देखा जा सकता है।

आंचलिक उपन्यास परम्परा : रेणु का प्राकृतिक-सामाजिक यथार्थ-

फणीश्वरनाथ रेणु ने हिन्दी उपन्यास साहित्य में आंचलिकता की एक नई परम्परा स्थापित की, जिसमें किसी विशिष्ट भौगोलिक अंचल के प्राकृतिक परिवेश, सामाजिक जीवन तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का समग्र तथा सूक्ष्म चित्रण किया जाता है। उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'मैला आँचल' में बिहार के मेरीगंज नामक काल्पनिक गाँव के भौगोलिक परिवेश, जलवायु, वर्षा-बाढ़, उपज-उत्पादन तथा पशु-पक्षियों का इतना विशद तथा जीवंत चित्रण मिलता है कि यह उपन्यास मानो उस अंचल का एक सर्वांगीण मानचित्र प्रस्तुत करता प्रतीत होता है। रेणु का यह चित्रण केवल वर्णनात्मक नहीं है, अपितु इसमें अंचल-विशेष के सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण तथा प्राकृतिक पर्यावरण के अंतर्संबंधों की गहन समझ भी अंतर्निहित है, जिसमें ग्राम्य-जीवन के त्योहार, ऋतु-पर्व तथा लोक-व्यवहार प्राकृतिक चक्रों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए प्रस्तुत होते हैं।

रेणु के एक अन्य उपन्यास 'परती परिकथा' में भी भूमि, विशेष रूप से परती अर्थात बंजर भूमि, के सामाजिक-आर्थिक तथा पारिस्थितिक महत्व को केन्द्रीय विषय के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास भूमि-सुधार, कृषि-विकास तथा ग्रामीण पुनर्निर्माण के प्रश्नों को प्रकृति के साथ मानव के सम्बन्धों के व्यापक सन्दर्भ में विश्लेषित करता है। रेणु की आंचलिक शैली को अंग्रेजी साहित्य के थॉमस हार्डी की परम्परा से भी तुलनात्मक रूप से जोड़ा जाता है, जिन्होंने भी अपने उपन्यासों में विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के प्राकृतिक परिवेश को कथा के केन्द्रीय तत्व के रूप में प्रस्तुत किया था। इस प्रकार रेणु का योगदान हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण को एक नई गहराई तथा प्रामाणिकता प्रदान करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आधुनिकतावादी दृष्टि : अज्ञेय का दार्शनिक प्रकृति-चिंतन-

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिन्दी साहित्य में आधुनिकतावादी प्रवृत्ति के प्रमुख प्रतिनिधि माने जाते हैं, और उनके उपन्यासों में प्रकृति का चित्रण प्रेमचन्द अथवा रेणु की यथार्थवादी-सामाजिक शैली से भिन्न, एक दार्शनिक तथा प्रतीकात्मक धरातल पर होता है। उनके उपन्यास 'नदी के द्वीप' में नदी तथा उसमें बने द्वीपों का प्रतीक अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें नदी समष्टि-चेतना अर्थात सामूहिक सामाजिक अस्तित्व का प्रतीक है, जबकि द्वीप व्यक्ति-चेतना अर्थात व्यक्तिगत अस्तित्व का प्रतीक है। इस प्रकार अज्ञेय के लिए प्रकृति केवल भौतिक परिवेश नहीं, अपितु मानव-अस्तित्व, स्वतंत्रता तथा सामाजिक सम्बन्धों के गहन दार्शनिक प्रश्नों को समझने का एक रूपक-तंत्र भी है।

अज्ञेय के आत्मकथात्मक उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' में भी प्रकृति का चित्रण नायक शेखर की आंतरिक मनोवैज्ञानिक यात्रा के साथ गहनता से गुंथा हुआ प्रस्तुत होता है, जिसमें बाह्य प्राकृतिक परिवेश तथा पात्र की आंतरिक चेतना के मध्य एक सूक्ष्म समानांतरता निर्मित होती है। यद्यपि अज्ञेय के प्रकृति-चित्रण को परम्परागत अर्थ में 'पर्यावरणवादी' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनका मुख्य सरोकार पारिस्थितिक संरक्षण से अधिक अस्तित्ववादी दर्शन से था, तथापि उनकी रचनाओं में प्रकृति के प्रति जो गहन संवेदनशीलता तथा दार्शनिक जिज्ञासा प्रकट होती है, वह हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण की एक समृद्ध तथा वैकल्पिक परम्परा का निर्माण करती है, जो पारिस्थितिक आलोचना के लिए भी एक महत्वपूर्ण अध्ययन-सामग्री प्रस्तुत करती है।

आदिवासी विस्थापन एवं पारिस्थितिक शोषण : संजीव का योगदान-

समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों में संजीव का नाम आदिवासी जीवन तथा पारिस्थितिक शोषण के यथार्थवादी तथा आलोचनात्मक चित्रण के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् 1990 में प्रकाशित उनके उपन्यास 'धार' में संथाल परगना क्षेत्र की कोयला खदानों में कार्यरत श्रमिकों तथा आदिवासी समुदाय के जीवन का गहन चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में मैना नामक नायिका के माध्यम से आदिवासी समाज की गरिमा, संघर्ष तथा उनके परम्परागत प्राकृतिक संसाधनों, विशेष रूप से भूमि तथा वन, पर औद्योगिक खनन के आक्रमण के परिणामस्वरूप उत्पन्न सामाजिक-पारिस्थितिक संकट को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

संजीव का यह उपन्यास हिन्दी साहित्य में उस नई प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें पर्यावरणीय शोषण केवल पृष्ठभूमि नहीं, अपितु कथा का केन्द्रीय नैतिक तथा राजनीतिक प्रश्न बन जाता है। यह प्रवृत्ति भारत में बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में सक्रिय हुए विभिन्न पर्यावरणीय आन्दोलनों, जैसे बड़े बाँध परियोजनाओं के विरुद्ध आदिवासी तथा किसान आन्दोलनों, से भी गहनता से प्रभावित प्रतीत होती है, जिसमें विकास की परियोजनाओं तथा स्थानीय समुदायों के पारिस्थितिक अधिकारों के मध्य संघर्ष एक केन्द्रीय सामाजिक-राजनीतिक विमर्श बन गया था। इस प्रकार संजीव जैसे लेखकों की रचनाएँ हिन्दी उपन्यास साहित्य में पर्यावरण चेतना के एक अधिक स्पष्ट, आलोचनात्मक तथा राजनीतिक रूप से सजग स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं।

प्रगतिशील परम्परा : नागार्जुन का ग्राम्य-प्रकृति चित्रण-

प्रगतिशील हिन्दी उपन्यास परम्परा के एक अन्य महत्वपूर्ण हस्ताक्षर नागार्जुन हैं, जिनके उपन्यासों में मिथिला क्षेत्र के ग्राम्य-जीवन तथा प्राकृतिक परिवेश का अत्यंत यथार्थवादी तथा सामाजिक-राजनीतिक चेतना से युक्त चित्रण मिलता है। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रकृति केवल सौंदर्यात्मक अलंकरण नहीं है, अपितु वह किसान के आर्थिक शोषण, भूमि-सम्बन्धों तथा वर्ग-संघर्ष के व्यापक सामाजिक यथार्थ से गहनता से जुड़ी हुई प्रस्तुत होती है। बाढ़, सूखा तथा फसल-नाश जैसी प्राकृतिक घटनाएँ उनके उपन्यासों में केवल प्राकृतिक आपदा नहीं, अपितु सामंती तथा पूँजीवादी शोषण-व्यवस्था के अंतर्गत किसान की असहायता को उजागर करने वाले सामाजिक-राजनीतिक रूपक के रूप में भी कार्य करती हैं।

नागार्जुन की इस दृष्टि की विशेषता यह है कि वे प्रकृति तथा समाज को पृथक इकाइयों के रूप में नहीं, अपितु एक अभिन्न तथा परस्पर-निर्भर व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें पारिस्थितिक असंतुलन का प्रत्यक्ष प्रभाव

सामाजिक असमानता तथा शोषण पर पड़ता है। यह दृष्टिकोण समकालीन पारिस्थितिक न्याय की अवधारणा से भी गहनता से मेल खाता है, जो यह तर्क प्रस्तुत करती है कि पर्यावरणीय संकट तथा सामाजिक असमानता एक-दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार नागार्जुन का योगदान हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण को एक स्पष्ट वर्गीय तथा राजनीतिक आयाम प्रदान करने में अत्यंत महत्वपूर्ण है, जो प्रेमचन्द की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए संजीव जैसे परवर्ती लेखकों की आलोचनात्मक पारिस्थितिक दृष्टि की भूमिका भी तैयार करता है।

समकालीन पारिस्थितिक उपन्यास : नई पीढ़ी की चिंताएँ-

इक्कीसवीं शताब्दी में हिन्दी उपन्यास साहित्य में पर्यावरणीय चेतना और अधिक स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष रूप में सामने आई है। रमेश दवे का उपन्यास 'हरा आकाश', नवीन जोशी का उपन्यास 'दावानल', तथा एस. आर. हरनोट का उपन्यास 'नदी रंग जैसी लड़की' जैसी रचनाएँ इस समकालीन प्रवृत्ति के प्रतिनिधि उदाहरण हैं, जिनमें वनाग्नि, नदी-प्रदूषण तथा पर्वतीय पारिस्थितिकी के क्षरण जैसे स्पष्ट पर्यावरणीय विषयों को कथा का केन्द्रीय आधार बनाया गया है। इन उपन्यासों में प्रकृति अब केवल एक निष्क्रिय पृष्ठभूमि नहीं रह जाती, अपितु वह स्वयं एक पीड़ित तथा प्रतिरोधी 'पात्र' के रूप में उभरती है, जिसका शोषण तथा विनाश कथा के नैतिक केन्द्र में स्थित होता है।

इस समकालीन प्रवृत्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि यह हिन्दी आलोचना-जगत में भी परिलक्षित हो रहा है, जैसा कि उषा नायर द्वारा सम्पादित 'पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार' जैसे आलोचनात्मक संकलन इस बात का प्रमाण हैं कि हिन्दी साहित्य-जगत अब पारिस्थितिक विमर्श को एक स्वतंत्र तथा महत्वपूर्ण आलोचना-श्रेणी के रूप में स्वीकार कर रहा है। यह प्रवृत्ति इस बात का भी संकेत है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य वैश्विक पारिस्थितिक चिंताओं, जैसे जलवायु परिवर्तन, जैव-विविधता क्षरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन, के साथ सक्रिय संवाद स्थापित कर रहा है, तथा भारतीय सन्दर्भ में इन वैश्विक चिंताओं को स्थानीय सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य में पुनर्व्याख्यायित कर रहा है।

प्रकृति चित्रण-

हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की तकनीकों तथा शैलीगत विशेषताओं का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि उपन्यासकारों ने प्रकृति को प्रस्तुत करने के लिए विविध साहित्यिक उपकरणों का प्रयोग किया है, जिनमें वर्णनात्मक यथार्थवाद, प्रतीकात्मकता, मानवीकरण तथा ऋतु-चक्र आधारित संरचना विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

शास्त्रीय परम्परा से आधुनिक यथार्थवाद तक : एक तुलनात्मक दृष्टि-

हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की आधुनिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए संस्कृत काव्य-परम्परा से इसकी तुलना करना उपयोगी है। संस्कृत महाकाव्यों तथा ऋतुसंहार जैसी काव्य-रचनाओं में प्रकृति का चित्रण मुख्यतः आदर्शीकृत, अलंकारिक तथा रस-प्रधान होता था, जिसमें प्रकृति का सौंदर्य मानवीय भावनाओं, विशेष रूप से श्रृंगार रस, को उद्दीप्त करने के साधन के रूप में प्रस्तुत होता था। इसके विपरीत आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में, विशेष रूप से प्रेमचन्द के पश्चात्, प्रकृति चित्रण क्रमशः यथार्थवादी, सामाजिक-आर्थिक यथार्थ से जुड़ा हुआ तथा अंततः आलोचनात्मक-पारिस्थितिक होता चला गया। यह परिवर्तन केवल साहित्यिक शैली का परिवर्तन नहीं है, अपितु यह भारतीय समाज के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण में आए व्यापक ऐतिहासिक परिवर्तन, विशेष रूप से औपनिवेशिक शोषण, औद्योगीकरण तथा स्वाधीनता-पश्चात विकास-नीतियों के प्रभाव, को भी प्रतिबिम्बित करता है।

यह तुलनात्मक दृष्टिकोण इस बात को भी स्पष्ट करता है कि आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण एक प्रकार से शास्त्रीय अलंकारिकता की विरासत को आत्मसात करते हुए भी उससे आगे बढ़कर एक नई, अधिक जटिल तथा सामाजिक-राजनीतिक रूप से सजग चित्रण-पद्धति का विकास करता है। रेणु तथा नागार्जुन जैसे लेखकों में जहाँ प्रकृति का सौंदर्यात्मक पक्ष अभी भी उपस्थित है, वहीं यह सौंदर्य अब सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष तथा पारिस्थितिक संकट के व्यापक सन्दर्भ से पृथक नहीं रहता। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण की यह यात्रा शास्त्रीय सौंदर्यशास्त्र तथा आधुनिक पारिस्थितिक यथार्थवाद के मध्य एक सृजनात्मक संवाद का निर्माण करती है।

वर्णनात्मक यथार्थवाद एवं भौगोलिक प्रामाणिकता-

हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की सबसे प्रचलित तथा प्रभावशाली तकनीक वर्णनात्मक यथार्थवाद है, जिसमें उपन्यासकार किसी विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र के प्राकृतिक परिवेश का अत्यंत सूक्ष्म तथा प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। रेणु के 'मैला आँचल' में यह तकनीक अपने सर्वोत्तम रूप में दिखाई देती है, जहाँ मेरीगंज के भौगोलिक स्वरूप, जलवायु, वनस्पति तथा जीव-जगत का इतना विस्तृत तथा विश्वसनीय चित्रण मिलता है कि पाठक उस अंचल की भौतिक वास्तविकता को प्रत्यक्ष रूप से अनुभव कर सकता है। यह वर्णनात्मक प्रामाणिकता केवल सौंदर्यात्मक उद्देश्य से प्रेरित नहीं है, अपितु यह पाठक में उस विशिष्ट पारिस्थितिकी तंत्र के प्रति एक गहन संवेदनशीलता तथा जुड़ाव उत्पन्न करने का भी कार्य करती है, जो पारिस्थितिक आलोचना की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है।

प्रतीकात्मकता एवं रूपक-निर्माण-

प्रकृति चित्रण की एक अन्य महत्वपूर्ण तकनीक प्रतीकात्मकता है, जिसमें प्राकृतिक तत्वों को मानवीय अनुभवों, सामाजिक स्थितियों अथवा दार्शनिक विचारों के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अज्ञेय के 'नदी के द्वीप' में नदी तथा द्वीप का प्रतीकात्मक प्रयोग इस तकनीक का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ भौतिक भूगोल के तत्व अमूर्त दार्शनिक अवधारणाओं, यथा व्यक्ति एवं समाज के सम्बन्ध, को अभिव्यक्त करने का माध्यम बन जाते हैं। इसी प्रकार अनेक हिन्दी उपन्यासों में वृक्ष, वर्षा, बाढ़ तथा सूखा जैसे प्राकृतिक तत्व सामाजिक परिवर्तन, संकट अथवा नवीनीकरण के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जिससे प्रकृति चित्रण केवल भौतिक वर्णन से आगे बढ़कर एक बहुस्तरीय अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करता है।

ऋतु-चक्र, पर्व एवं ग्राम्य-जीवन का अंतर्संबंध-

हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की एक विशिष्ट प्रवृत्ति ऋतु-चक्र तथा ग्रामीण पर्व-त्योहारों के मध्य के अंतर्संबंध का चित्रण है। रेणु के उपन्यासों में वर्षा ऋतु, फसल-कटाई तथा विभिन्न मौसमी पर्वों का चित्रण ग्राम्य-समाज के दैनिक जीवन-चक्र तथा प्राकृतिक चक्र के मध्य की अभिन्नता को स्पष्ट करता है। यह तकनीक इस बात को रेखांकित करती है कि पारम्परिक भारतीय ग्रामीण समाज में मानव-जीवन तथा प्रकृति के मध्य कोई स्पष्ट विभाजन-रेखा नहीं थी, अपितु दोनों एक ही समग्र पारिस्थितिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था के अभिन्न अंग थे। यह चित्रण-शैली आधुनिक पारिस्थितिक चिंतन की उस अवधारणा से भी गहनता से मेल खाती है, जो मानव तथा प्रकृति के मध्य समग्र तथा अंतर्संबंधित दृष्टिकोण की वकालत करती है, न कि उनके पृथक्करणवादी दृष्टिकोण की।

मानवीकरण एवं प्रकृति की सक्रिय भूमिका-

समकालीन पारिस्थितिक उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की एक उल्लेखनीय तकनीक मानवीकरण है, जिसमें नदी, पर्वत अथवा वन जैसे प्राकृतिक तत्वों को एक सक्रिय, अनुभवशील तथा कभी-कभी पीड़ित 'पात्र' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एस. आर. हरनोट के 'नदी रंग जैसी लड़की' जैसे उपन्यासों में नदी को एक जीवंत तथा स्त्रीवत् चरित्र के रूप में चित्रित किया जाता है, जो मानवीय शोषण तथा प्रदूषण से पीड़ित होती है, जिससे यह चित्रण पारिस्थितिक स्त्रीवाद अथवा इकोफेमिनिज़्म की अवधारणा से भी जुड़ जाता है। इस तकनीक के माध्यम से उपन्यासकार पाठक में प्रकृति के प्रति एक नैतिक तथा भावनात्मक सम्बन्ध उत्पन्न करने का प्रयास करते हैं, जिससे पर्यावरणीय क्षति को

केवल एक तकनीकी अथवा आर्थिक समस्या के रूप में नहीं, अपितु एक गहन नैतिक तथा मानवीय संकट के रूप में अनुभव किया जा सके।

इस मानवीकरण की तकनीक का एक अतिरिक्त आयाम पशु-पक्षी चित्रण में भी दिखाई देता है, जहाँ अनेक हिन्दी उपन्यासकारों ने स्थानीय जीव-जगत, विशेष रूप से पक्षियों, के माध्यम से पारिस्थितिक परिवर्तन तथा क्षरण को चित्रित किया है। पक्षियों के आवास-नाश, प्रवासी पक्षियों के मार्ग में परिवर्तन, तथा स्थानीय जैव-विविधता के क्षरण जैसे विषय अनेक समकालीन उपन्यासों में एक सूक्ष्म परन्तु सशक्त पारिस्थितिक संकेतक के रूप में प्रयुक्त होते हैं, जो पाठक को पर्यावरणीय परिवर्तन की गम्भीरता के प्रति सजग करते हैं।

पारिस्थितिक स्त्रीवाद अर्थात इकोफेमिनिज़्म की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों का विश्लेषण एक विशेष रूप से उर्वर अध्ययन-क्षेत्र प्रस्तुत करता है, क्योंकि भारतीय सांस्कृतिक परम्परा में प्रकृति को प्रायः स्त्रीवत् रूप में, यथा 'धरती माता' अथवा नदियों को देवी-स्वरूप में, कल्पित किया जाता है। यह सांस्कृतिक प्रतीक-व्यवस्था हिन्दी उपन्यासों में भी व्यापक रूप से परिलक्षित होती है, जहाँ स्त्री-पात्रों तथा प्राकृतिक तत्वों के मध्य एक गहन प्रतीकात्मक समानांतरता स्थापित की जाती है, दोनों के शोषण तथा पीड़ा को समान सामाजिक-सांस्कृतिक शक्ति-संरचनाओं से उत्पन्न माना जाता है। संजीव के उपन्यासों में आदिवासी स्त्री-पात्रों तथा उनकी भूमि एवं वन के साथ के सम्बन्धों का चित्रण इस इकोफेमिनिस्ट दृष्टिकोण का एक सशक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें स्त्री-शोषण तथा प्रकृति-शोषण एक ही औपनिवेशिक-पितृसत्तात्मक विचारधारा की अभिव्यक्तियाँ प्रतीत होती हैं।

निष्कर्ष-

प्र स्तुत शोध पत्र के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रकृति चित्रण तथा पर्यावरण चेतना का विकास एक क्रमिक, बहुस्तरीय तथा समृद्ध साहित्यिक यात्रा रही है। प्रेमचन्द के यथार्थवादी कृषि-केन्द्रित चित्रण से आरम्भ होकर, रेणु की आंचलिक प्रामाणिकता, अज्ञेय के दार्शनिक प्रतीकवाद, तथा संजीव जैसे लेखकों के आलोचनात्मक तथा राजनीतिक रूप से सजग आदिवासी-पारिस्थितिक चित्रण से होते हुए, यह परम्परा समकालीन पारिस्थितिक उपन्यासकारों की स्पष्ट तथा प्रत्यक्ष पर्यावरणीय प्रतिबद्धता तक पहुँची है। यह विकास-यात्रा इस बात का प्रमाण है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य केवल सामाजिक तथा मानवीय सम्बन्धों तक सीमित नहीं रहा, अपितु उसने समय के साथ मानव-प्रकृति सम्बन्धों के गहन तथा जटिल प्रश्नों को भी अपने कथ्य का केन्द्रीय अंग बनाया।

यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण की तकनीकें, यथा वर्णनात्मक यथार्थवाद, प्रतीकात्मकता, ऋतु-चक्र आधारित संरचना तथा मानवीकरण, न केवल सौंदर्यात्मक अपितु वैचारिक तथा नैतिक प्रयोजनों की भी पूर्ति करती हैं। इन तकनीकों के माध्यम से हिन्दी उपन्यासकारों ने पाठकों में प्रकृति के प्रति एक गहन संवेदनशीलता, जुड़ाव तथा नैतिक उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया है, जो पारिस्थितिक आलोचना के मूल उद्देश्यों से गहनता से मेल खाता है।

इसके साथ ही यह अध्ययन इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि हिन्दी उपन्यासों में प्रकृति चित्रण तथा सामाजिक यथार्थ के मध्य एक अविभाज्य सम्बन्ध विद्यमान है। प्रेमचन्द से लेकर संजीव तक, प्रत्येक प्रमुख उपन्यासकार ने प्रकृति को समाज से पृथक करके नहीं, अपितु वर्ग, जाति, लिंग तथा शक्ति की सामाजिक संरचनाओं के साथ अंतर्ग्रथित रूप में चित्रित किया है। यह दृष्टिकोण हिन्दी साहित्य की पारिस्थितिक चेतना को पश्चिमी इकोक्रिटिसिज्म की कुछ प्रारम्भिक प्रवृत्तियों से भिन्न तथा विशिष्ट बनाता है, जो कभी-कभी प्रकृति को सामाजिक यथार्थ से पृथक करके एक शुद्ध, अस्पर्शित इकाई के रूप में देखने की प्रवृत्ति रखती थीं। भारतीय, तथा विशेष रूप से हिन्दी, पारिस्थितिक साहित्यिक चिंतन की यह समाज-सापेक्ष दृष्टि इसे वैश्विक पारिस्थितिक आलोचना-विमर्श में एक विशिष्ट तथा मूल्यवान योगदान के रूप में स्थापित करती है। सम्पूर्णतः यह कहा जा सकता है कि हिन्दी उपन्यास साहित्य पर्यावरणीय चेतना के प्रसार तथा सामाजिक परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक भूमिका निभाने की क्षमता रखता है, परन्तु इस साहित्यिक सम्पदा का व्यवस्थित पारिस्थितिक विश्लेषण तथा शैक्षणिक उपयोग अभी भी अपेक्षाकृत सीमित है, जिसके विस्तार की दिशा में ठोस प्रयासों की आवश्यकता है।

सुझाव-

प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरण चेतना तथा प्रकृति चित्रण के अध्ययन एवं प्रसार हेतु निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सर्वप्रथम, हिन्दी विभागों तथा साहित्य अध्ययन केन्द्रों में पारिस्थितिक आलोचना अर्थात इकोक्रिटिसिज्म को एक स्वतंत्र तथा विधिवत पाठ्यक्रम विषय के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे विद्यार्थी हिन्दी साहित्य को पारिस्थितिक दृष्टिकोण से पढ़ने तथा विश्लेषित करने में सक्षम हो सकें। द्वितीयतः, प्रेमचन्द, रेणु, अज्ञेय तथा संजीव जैसे प्रतिनिधि उपन्यासकारों की रचनाओं पर केन्द्रित समर्पित पारिस्थितिक अध्ययन-ग्रन्थों तथा शोध-संकलनों का प्रकाशन प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे इस विषय पर उपलब्ध आलोचनात्मक साहित्य की मात्रा तथा गुणवत्ता दोनों में वृद्धि हो सके।

तृतीयतः, समकालीन हिन्दी उपन्यासकारों को पर्यावरणीय विषयों पर लेखन हेतु प्रोत्साहित करने के लिए विशेष साहित्यिक पुरस्कार तथा अनुदान योजनाएँ स्थापित की जानी चाहिए, जिससे पारिस्थितिक साहित्य की नई पीढ़ी को प्रोत्साहन मिल सके। चतुर्थतः, क्षेत्रीय तथा आंचलिक हिन्दी उपन्यासों, जिनमें स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्रों का प्रामाणिक चित्रण मिलता है, के अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद को बढ़ावा दिया जाना चाहिए, जिससे भारतीय पारिस्थितिक साहित्यिक चिंतन को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी समुचित पहचान मिल सके।

पंचमतः, हिन्दी उपन्यासों में चित्रित विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्रों, जैसे रेणु के मेरीगंज अथवा संजीव के संथाल परगना, का अंतर-विषयक अध्ययन, जिसमें साहित्य तथा भूगोल अथवा पर्यावरण विज्ञान के विद्वान संयुक्त रूप से कार्य करें, प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे साहित्यिक चित्रण की वैज्ञानिक तथा भौगोलिक प्रामाणिकता का भी विश्लेषण सम्भव हो सके। षष्ठतः, विद्यालय तथा महाविद्यालय स्तर के पाठ्यक्रमों में हिन्दी उपन्यासों के पारिस्थितिक अंशों को विशेष रूप से सम्मिलित किया जाना चाहिए, जिससे युवा पीढ़ी में साहित्य के माध्यम से पर्यावरणीय जागरूकता तथा संवेदनशीलता का विकास हो सके।

सप्तमतः, हिन्दी उपन्यासों में इकोफेमिनिस्ट दृष्टिकोण से स्त्री-प्रकृति सम्बन्धों के चित्रण पर केन्द्रित विशेष शोध-परियोजनाएँ आरम्भ की जानी चाहिए, जिससे इस अंतर-विषयक क्षेत्र में हिन्दी साहित्य के योगदान को समुचित पहचान प्राप्त हो सके। अष्टमतः, नागार्जुन जैसे प्रगतिशील परम्परा के लेखकों में निहित पारिस्थितिक-वर्गीय दृष्टिकोण के तुलनात्मक अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे भारतीय पारिस्थितिक साहित्यिक चिंतन के सामाजिक-राजनीतिक आयाम को अधिक स्पष्टता से समझा जा सके। अंततः, हिन्दी साहित्य अकादमियों तथा विश्वविद्यालयों को नियमित रूप से पारिस्थितिक साहित्य पर केन्द्रित संगोष्ठियों, कार्यशालाओं तथा शोध-परियोजनाओं का आयोजन करना चाहिए, जिससे यह अपेक्षाकृत नवीन परन्तु अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन-क्षेत्र हिन्दी साहित्य-जगत में और अधिक सुदृढ़ता से स्थापित हो सके।

संदर्भ-

1. प्रेमचन्द : गोदान, हिन्दी समय डिजिटल संग्रह।

2. प्रेमचन्द : रंगभूमि, हिन्दी समय डिजिटल संग्रह।

3. फणीश्वरनाथ रेणु : मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4. फणीश्वरनाथ रेणु : परती परिकथा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

5. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' : नदी के द्वीप, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

6. सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' : शेखर : एक जीवनी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

7. संजीव : धार, उपन्यास, हिन्दी प्रकाशन।

8. रमेश दवे : हरा आकाश, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, 2016।

9. नवीन जोशी : दावानल, उपन्यास, 2008।

10. एस. आर. हरनोट : नदी रंग जैसी लड़की, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022।

11. उषा नायर (सम्पा.) : पारिस्थितिक संकट और समकालीन रचनाकार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019।

12. आधुनिक हिन्दी आलोचना की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, हिन्दी आलोचना शोध साहित्य।

13. हिन्दी उपन्यास परम्परा एवं आंचलिकता : ऐतिहासिक विवेचन, हिन्दी साहित्य इतिहास ग्रन्थ।